दशलक्षण पर्व

रमा कान्त जैन

Scanned by CamScanner

णमोकार (नमस्कार) मन्त्र

णमो अरहंताणं।

अरहंतों को नमस्कार

णमो सिद्धाणं।

सिद्धों को नमस्कार

णमो आइरियाणं।

आचार्यों को नमस्कार

णमो उवज्झायाणं।

उपाध्यायों को नमस्कार

णमो लोए सव्वसाहूणं।।

लोक में सभी साधुओं को नमस्कार!

Scanned by CamScanner

2213
43

कल्पना जैन सागर

अपनी बात

दिगम्बर आम्नायी जैन धर्मानुयायियों का सबसे अधिक महत्वपूर्ण धार्मिक पर्व 'दशलक्षण पर्व' नाम से विख्यात है। क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चार कषायों के शमन का उपाय बताने वाला तथा व्रत-उपवास आदि द्वारा तन-मन को संयमित करने वाला यह पर्व यूं तो वर्ष में तीन बार - माघ, चैत्र और भाद्रपद मास में पड़ता है, किन्तु इनमें सबसे अधिक महत्व भाद्रपद शुक्ल पंचमी से भाद्रपद शुक्ल अनन्त-चतुर्दशी तक पड़ने वाले दशलक्षण पर्व का है। इस पर्व में एक-एक दिन क्रमशः क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य नामक दस धर्मों की आराधना की जाती है। जिनालयों में अर्हत् जिनेन्द्र देव की पूजन व आराधना भव्य रूप में होती है। श्रावक/श्राविका मन्दिर में दर्शन-पूजन तो करते ही हैं, व्रत-उपवास द्वारा अपने तन-मन को निर्मल बनाने का प्रयास भी करते हैं। यह आत्मोन्नयन का पर्व है।

अभी चन्द दिन पूर्व - **'शोधादर्श'** के सम्पादक श्री रमा कान्त जैन से दशलक्षण पर्व के सम्बन्ध में उनका आलेख सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उसमें उन्होंने इस पर्व का महत्व बताते हुए क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आंकिचन्य एवं ब्रह्मचर्य आदि दस धर्मो की व्याख्या बड़ी सरल-सुबोध भाषा व रोचक शैली में की है। उनका आलेख सुन कर हम भाव विभोर हो गये और हमारे मन में यह भावना जागृत हुई कि इस आलेख को व्यापक प्रसार हेतु पुस्तंकाकार प्रकाशित कर जन सामान्य के लाभार्थ वितरित किया जाय और यह कि यह पुण्यकार्य इस दशलक्षण पर्व पर सम्पन्न कर लिया जाय। हमारे निवेदन पर श्री रमाकान्त जी ने इसे पुस्तकाकार प्रकाशित कराने की सहमति हमें दे दी। साथ ही, हमारे अनुरोध पर अल्प सूचना पर इसके सुरुचिपूर्ण मुद्रण-प्रकाशन की व्यवस्था रत्न-ज्योति प्रेस, चारबाग, लखनऊ के स्वामी श्री नलिन कान्त जैन ने समय से कर दी। हम इन दोनों महानुभावों के आभारी हैं। यह सामयिक उपयोगी पुस्तक भव्यजनों को भेंट करते हुए हमें असीम प्रसन्नता है।

भाद्रपद शुक्ल 5, वीर निर्वाण संवत् 2534 — भेंटकर्ता :-
(4 सितम्बर, 2008 ई.) — नरेश चन्द्र जैन
443, राजेन्द्र नगर, — राजीव जैन - शोभा जैन
लखनऊ-226 004 — ऋचा - एकता

Scanned by CamScanner

पर्यूषण पर्व महान!

विमल शान्ति दे, कर बाधाओं का अवसान,

श्रद्धान-ज्ञान-आचरण, हों सम्यक् शुद्ध अम्लान,

उत्तम क्षमादिक धर्म मनन, हों शोडष भाव प्रधान,

कर विश्व प्रलय उपशान्त, वर्षा शान्ति सुधा मुस्कान,

पर्यूषण पर्व महान।

जयति जय पर्व महान।।

भगवन्! हम सबको पर्वराज को समुचित रूप से मनाने योग्य बल तथा सामर्थ्य दें।

– "ज्योति"

Scanned by CamScanner

दशलक्षण पर्व

दशलक्षण पर्व - क्षमावणी - पर्युषण पर्व - दस धर्म

दशलक्षण पर्व यूं तो वर्ष में तीन बार पड़ता है - माघ शुक्ल पंचमी से माघ शुक्ल चतुर्दशी तक, चैत्र शुक्ल पंचमी से चैत्र शुक्ल चतुर्दशी तक तथा भाद्रपद शुक्ल पंचमी से भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी, जो अनन्त चतुर्दशी के नाम से भी विख्यात है, तक दस-दस दिन मनाया जाता है, किन्तु इन तीनों में सर्वाधिक प्रसिद्ध भाद्रपद का दशलक्षण पर्व है। यह वर्षा ऋतु में पड़ता है। इस समय चातुर्मास स्थापना किये हुए मुनि महाराजों, आर्यिका माताओं एवं अन्य त्यागीवृन्द का समागम भी प्रायः हर नगर-बस्ती में सुलभ हो जाता है और उनसे धर्म-ध्यान करने की प्रेरणा मिलती है और उनके उपदेश-प्रवचन सुनने का लाभ श्रावकों-श्राविकाओं को सहज मिल जाता है।

दशलक्षण पर्व में एक-एक दिन क्रमशः क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य नामक धर्म के दस लक्षणों की आराधना की जाती है। 'धर्म' शब्द संस्कृत की 'धृ' धातु से बना है और इसका सामान्य अर्थ है 'जो धारण किया जाये'। 'वत्थु स्वभावो धम्मो' अर्थात् वस्तु का स्वभाव उसका धर्म होता है, यह परिभाषा भी धर्म की की गई है, जैसे कि आग का धर्म जलाना है और पानी का धर्म तरलता, बहना और शीतलता है। किन्तु यहां दशलक्षण धर्म के प्रसंग में, जहां तक अपनी समझ में आया, धर्म से आशय उस प्रक्रिया से है जो हमारे स्वभाव को, व्यवहार को नियन्त्रित करे। यह पर्व आत्म-नियन्त्रण या आत्मानुशासन का पर्व है।

प्रत्येक प्राणी में क्रोध, मान, माया और लोभ नैसर्गिक रूप से विद्यमान रहते हैं, किसी में कम, किसी में अधिक। इनकी अधिकता

Scanned by CamScanner

मन को कसैला कर देती है। अतः इन्हें कषाय कहा जाता है। ये चारों ही कषाय, कम से कम इनकी अधिकता, मनुष्य के लिये अहितकर है। वैसे, इन कषायों से सर्वथा शून्य मानव की कल्पना भी कठिन है। कहते हैं, 'क्रोध प्रीति का नाश करता है और मनुष्य का पतन कराता है, मान अर्थात् अहंकार या घमंड विनय को समाप्त कर देता है और मनुष्य को अधमगति में पहुंचाता है, माया अर्थात् छल-कपट मैत्री की नाशक है और सद्गति का नाश करती है, तथा लोभ जो सर्वविनाशक है इस लोक और परलोक में महान भय का कारण होता है'। अतः इन चारों कषायों को गर्हित माना गया है। सद्नागरिक बनने के लिये, सहज शान्तिपूर्वक जीवन जीने के लिये तथा परिवार और समाज में सौहार्दपूर्ण एवं सद्भावपूर्ण वातावरण के सृजन के लिये यह आवश्यक है कि हम क्रोध, मान, माया और लोभ से यथाशक्य विरत रहें। इन कषायों के शमन या इन्हें मन्द करने के लिये जिनेन्द्रदेव और पूर्ववर्ती आचार्यो ने उपचार स्वरूप क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य और शौच इन पांच धर्मों का उपदेश दिया था।

अतः दशलक्षण पर्व के प्रथम पांच दिनों में क्रमशः क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य और शौच धर्मों की आराधना कर अपनी क्रोध, मान, माया और लोभ कषायों के शमन का प्रयास किया जाता है। तदनन्तर पांच दिन क्रमशः संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य की आराधना द्वारा आत्मोन्नति की ओर अग्रसर हुआ जाता है। इस दस दिन की अवधि में यशाशक्ति व्रत-उपवास करके शरीर को भी संयमित रखने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार दशलक्षण पर्व तन और मन दोनों के ही उन्नयन का पर्व है।

क्षमावणी : दशलक्षण पर्व का समापन आश्विन कृष्ण प्रतिपदा को 'क्षमावणी' से होता है। जहाँ क्षमा धर्म के आराधन से क्रोध कषाय के शमन का प्रयास किया जाता है और हम किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा किये

Scanned by CamScanner

गये अपराध, दोष या भूल को क्षमा कर उसके कारण मन में उपजे क्रोध को दूर कर अपनी उदारता का परिचय देते हैं, वहीं क्षमावणी पर हम अपने आत्मीयों, परिचितों एवं सम्पर्क में आने वाले अन्य व्यक्तियों से विगत वर्ष में जाने-अनजाने अपने से हो गये अपराध, दोष या भूल के लिये क्षमा याचना करते हैं और दूसरों द्वारा की गई क्षमायाचना को स्वीकार कर उन्हें क्षमा प्रदान करते हैं। अपनी गलती को स्वीकार करना और उसके लिये क्षमा याचना करना सरल-सहज नहीं है, उसके लिये बड़े साहस की आवश्यकता होती है। सहसा कोई अपनी गलती को स्वीकार नहीं करता, क्षमा मांगना तो दूर की बात है। उस दिन हम परम्परागत ढंग से परस्पर यह वाक्य तो दुहराते हैं 'खम्मामि सव्व जीवाणं, सव्वे जीवा खमन्तु में। मित्ती में सव्व भूदेसु, वैर मज्झं ण केणवि।।' (अर्थात् मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ, सब जीव मुझे क्षमा करें। मेरी सब प्राणियों से मित्रता है, और मेरा किसी से वैर नहीं है, किन्तु यह मात्र औपचारिकता होती है। यदि हम सब या हममें से अधिकांश व्यक्ति निर्मल अन्तःकरण से इस बात को अपने आचरण में उतार लें, तो यह धरा स्वर्ग बन जाये। कहीं कोई असद्भाव, लड़ाई-झगड़ा नज़र न आये। किन्तु मानवीय दुर्बलताओं के चलते ऐसा हो नहीं पाता। एक साल का हिसाब साफ नहीं हो पाता कि अगले साल का नया खाता शीघ्र ही खुल जाता है।

पर्युषण पर्व : यहाँ यह उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि 'दशलक्षण पर्व' और 'क्षमावणी' का प्रचलन दिगम्बर जैन आम्नाय में है। 'दशलक्षण पर्व' को 'पर्युषण पर्व' के नाम से भी अभिहित किया जाता है। साधर्मी श्वेताम्बर और स्थानकवासी समाज में भाद्रपद कृष्ण द्वादशी से भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी या पंचमी तक आठ दिन धर्माराधन और व्रत-उपवास आदि द्वारा आत्मोन्नयन का जो पर्व मनाया जाता है वह विशेषतः 'पर्युषण पर्व' के नाम से विख्यात है। इसके समापन दिन

Scanned by CamScanner

'संवत्सरी' को साधर्मी बन्धु परस्पर 'मिच्छामि दुक्कडम्' (अर्थात् अपने दुष्कृत्य के लिये क्षमा चाहता हूँ) कहते हैं।

'परि' + 'उष्ण' इन दो शब्दों से मिलकर 'पर्युष्ण', 'पर्युषन्' अथवा 'पर्युषण' शब्द बना है। 'परि' का अर्थ है चारों ओर से या सब तरफ से 'उष्ण' का अर्थ है 'दाह'। 'परिसमन्तात् उष्यन्ते दहयन्ते पापकर्माणि, यस्मिन् तत् पर्युषणम्' अर्थात् जिसमें चारों ओर के पाप कर्मों का दहन किया जाता है वह पर्युषण है, यह व्याख्या उसकी की गई है। प्राकृत भाषा में 'पज्जुसण' और 'पज्जोसवणा', संस्कृत में 'पर्युषन्' के अतिरिक्त 'पर्युपशमना', 'पर्युपवास' और 'पर्युपासना' तथा अपभ्रंश में इसे 'पर्यूषण' नाम से अभिहित किया गया है।

डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के अनुसार पर्युषण का अर्थ है पर भावों से विरत होकर स्व-भाव में रमण करना अर्थात् वाह्य दृष्टि का परित्याग करके अन्तर्मुखी बनना। चातुर्मासिक वर्षायोग जैन मुनियों का पर्युषण कल्प कहलाता है। उसके मध्य पवित्र भाद्रपद मास में पड़ने वाला आठ दिवसीय पर्युषण पर्व और तदनन्तर दस दिवसीय दशलक्षण पर्व आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वोपरि महत्व के हैं। इनके निमित्त धार्मिक जन अपनी ऐहिक व्यस्तताओं से विराम लेकर आत्मालोचन, आत्म निरीक्षण, आत्म जागृति एवं आत्मोपलब्धि के लिये प्रयत्नवान होते हैं और उत्तम क्षमा आदि दस आत्मधर्मों की आराधना, चिन्तन, मनन तथा उन्हें जीवन में उतारने का प्रयास करते हैं।

दस धर्म

यहाँ उत्तम क्षमा आदि दस धर्मों का क्रमशः एक-एक कर विवेचन किया जा रहा है।

क्षमाधर्म : क्षमाधर्म को क्रोध रूपी कषाय के शमन का उपचार बताया गया है। किन्तु सबसे पहले विचारणीय यह है कि हमें क्रोध से क्या-क्या हानियां होती हैं और हमें क्रोध किन कारणों से आता है।

Scanned by CamScanner

जब हमें गुस्सा आता है तो हमारा खून खौल उठता है और वह जलता है। हमारे मन को क्लेश होता है। हम आपा खो बैठते हैं और वाणी से, उचित-अनुचित का ध्यान न रख, जो मुँह में आया बक देते हैं जिससे सामने वाले के मन में भी क्लेश उत्पन्न हो जाता है। कभी-कभी गुस्से में आकर हम मारपीट पर या सामान की तोड़फोड़ पर उतारू हो जाते हैं। इस प्रकार कभी दूसरों की सम्पत्ति की और कभी अपनी सम्पत्ति की भी क्रोधवश क्षति कर डालते हैं। अतः क्रोध की कीमत काफी चुकानी पड़ती है।

आप कहेंगे 'क्रोध न करो'। यह कहना सरल है, पर इस पर पूर्णतः अमल करना कठिन है। बड़े-बड़े शान्त परिणामी महाराज भी इससे सर्वथा अछूते रहे हों, कहना कठिन है। हां, इस पर यथासंभव नियन्त्रण रखना हर एक के लिये श्रेयस्कर है। अब देखना यह है कि हमें क्रोध किन-किन कारणों से आता है और उसे हम यथासम्भव कैसे-कैसे वश में कर सकते हैं।

जब कोई हमारी उपेक्षा करता है, हमारी अवमानना करता है, या हमसे अभद्र व्यवहार करता है तो हमें क्रोध आता है। यह स्वाभाविक भी है। किन्तु यदि हम विवेक से काम लें और इन बातों पर ध्यान न दें अर्थात् उपेक्षा करने वाले, अवमानना करने वाले और अभद्र व्यवहार करने वाले की उपेक्षा कर दें, उसके सामने से उठकर चले जायें अथवा ठंडे दिमाग से यह विचार कर लें कि कदाचित् दूसरे द्वारा क़ी गई उपेक्षा, अवमानना या अभद्र व्यवहार के पीछे हमारा अपना ही कोई दोष रहा हो, तो क्रोध में कमी स्वतः आ जायेगी।

जब कोई हमें नुकसान पहुंचाता है तो हमें गुस्सा आ जाता है। उस स्थिति में भी यह सोचना-समझना आवश्यक है कि यह हानि उसने जानबूझकर हमें कष्ट देने के लिये पहुंचाई है अथवा उससे अनायास हो गई है। यदि उससे अनायास गलती से हमें हानि पहुंची है तो हमारे

Scanned by CamScanner

क्रोध की मात्रा स्वतः कम हो जायेगी।

हम आये दिन औरों से तरह-तरह की अपेक्षा करते हैं। अपेक्षा पूरी न होने पर मन में खिन्नता आती है और यह खीझ क्रोध में उमड़ पड़ती है। पहली बात यह है कि हम औरों से कम से कम अपेक्षा करें और अपेक्षा पूरी न होने पर अपने मन को समझा लें कि कदाचित् हमारी अपेक्षा पूरी न कर पाने में उसकी अपनी कोई मजबूरी रही होगी। ऐसा करके हम अपने क्रोध की मात्रा को नियन्त्रित कर सकते हैं।

अपने ऊपर और दूसरों के ऊपर होते अन्याय को देखकर भी हमारा क्रोध भड़क उठता है और हम उसका प्रतिकार करने के लिये कटिबद्ध हो उठते हैं। जब कोई हमें, हमारे परिवार के किसी सदस्य को, हमारे धर्म को, हमारी जाति को कुछ कहता है और हमारे देश के विषय में कोई प्रतिकूल टिप्पणी करता है, तो हमें बुरा लगता है और हम उसका प्रतिकार करने के लिये आतुर हो उठते हैं। किन्तु ऐसा करते हुए भी हमें विवेक और शालीनता से काम लेना उचित है।

जिनेन्द्र देव और आचार्यों ने क्रोध के शमन का उपाय क्षमा बताया है। वह भी ठीक है, किन्तु तभी जब क्षमा करने वाला व्यक्ति क्षमा पाने वाले व्यक्ति से बलिष्ठ हो। कहा भी है - 'क्षमा वीरस्य भूषणम्'। जो प्रतिकार करने में समर्थ नहीं है उसके द्वारा क्षमादान करने का क्या अर्थ?

मार्दवधर्म : मार्दवधर्म मान कषाय के शमन के उपचार स्वरूप है। मान अर्थात् अहंकार या घमण्ड को गर्हित माना गया है। कहा भी है -

नीचे रह पैर पुजते आये सदा,
सिर पर पड़ती आयी चपत है।
घमंडी को नहीं पूछता यहां कोई,
विनयवान की होती यहां खपत है।।

Scanned by CamScanner

रावण महाविद्वान, पराक्रमी और बलशाली था, किन्तु अहंकार के कारण उसका सर्वनाश हो गया। अहंकारी व्यक्ति को कोई पसन्द नहीं करता। कहावत है, 'मानी का सिर नीचा'। अतः स्वभाव में मृदुता अर्थात् कोमलता लाने, नम्र परिणामी होने, मद रहित होने और विनयवान होने की आवश्यकता है। मृदुता से ही 'मार्दव' शब्द बना है और जिनेन्द्र देव एवं आचार्यों ने मान कषाय के शमन हेतु मार्दवधर्म का उपदेश दिया है।

आर्जवधर्म : आर्जवधर्म का उपदेश मायाचारिता के शमन के लिये दिया गया है। मानव अपने स्वार्थ साधन के लिए प्रायः मायाचारिता या यूं कहें, कुटिलता या छल-कपट का सहारा लेता है जो उचित नहीं है। छल-कपट पारस्परिक संबंधों को बिगाड़ने वाला है। अपने पराये हो जाते हैं। वर्षों की प्रगाढ़ मैत्री क्षण भर में टूट जाती है। इसीलिये जिनेन्द्र देव और आचार्यों ने परस्पर व्यवहार में ऋजुता अर्थात् सरलता अपनाने पर बल दिया है। ऋजुता से ही 'आर्जव' शब्द बना है। कहा गया है-

'रास्ती है सीधी राह, रहबर इसका कोई नहीं।
इस राह पर चल, आज तक कोई भटका नहीं।।

यहाँ रास्ती से अभिप्राय सरलता से है। सरल स्वभावी व्यक्ति सबको प्रिय होते हैं।

सत्यधर्म : सत्यधर्म को अंगीकार करना भी मायाचारिता अर्थात् छल-कपट के परिहार का एक उपाय है। जो जैसा है, जैसा देखा सुना है, उसे उसी रूप में हित-मित वचन के साथ कहना सत्यधर्म बताया गया है। जिसे किसी से राग-द्वेष नहीं होगा, जिसके मन में किसी प्रकार की कषाय नहीं होगी, वही वस्तु को यथावत प्रकट करेगा और उत्तम सत्य नामक आत्मधर्म का पालन करेगा। स्वयं को सत्यवादी कहलाना और दूसरों से सत्य भाषण की अपेक्षा किया जाना मानव की स्वाभाविक इच्छा है। अतः 'वस्तु स्वभावो धर्मः' परिभाषा के अनुसार

Scanned by CamScanner

'सत्य' मानव का स्वाभाविक धर्म है। सभी शास्ताओं, धर्म प्रणेताओं, धर्म ग्रन्थों और धर्म गुरूओं ने 'सत्य' बोलने पर वल दिया है। प्रायः माता-पिता अपनी सन्तान को और गुरुजन अपने शिष्यों को सच बोलने की ही सीख देते हैं। यही नहीं, जिन व्यक्तियों का सारा कार्य-व्यापार, काम-धन्धा झूठ पर अवलम्बित रहता हो, वे भी अपने साथियों से कम से कम अपने साथ सत्य बोले जाने की अपेक्षा रखते हैं और उसी के आधार पर उनका आपस में विश्वास टिका होता है। अतः परस्पर विश्वास का जनक और उसकी आधारशिला सत्य भाषण ही है। सत्य भाषण स्पष्टवादिता, सरलता और ईमानदारी का परिचायक है। जिनेन्द्र-प्रणीत दशलक्षण धर्म में 'सत्य' की महत्ता का वर्णन करते हुए उसे सब धर्मों में प्रधान, महीतल पर सबसे बड़ा विधान, संसार-समुद्र से तरने के लिये पुल समान, पुण्यकर्म प्रवर्तक, दोषों और आपदाओं का निवारक, लोक-परलोक में सुखकारक तथा सब जीवों के मन में सुख का जनक, बताया गया है। यह भी एक सत्य है कि सच प्रायः कड़वा होता है और उससे कोई दो-चार होना नहीं चाहता, उसका सामना करना नहीं चाहता। इसीलिए नीतिकार ने कहा है, 'सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्, मा ब्रूयात् सत्यं अप्रियम्'।

शौचधर्म : 'शौच' शब्द का घनिष्ट सम्बन्ध 'शुचि' शब्द से है। 'शुचि' शब्द के शब्दकोशगत सामान्य अर्थ हैं - 1. शुद्ध , पवित्र, 2. विमल, विशुद्ध, स्वच्छ, साफ, 3. निर्दोष, निष्कपट, निश्छल, निष्पाप, निष्कलंक, 4. सद्गुणी, पवित्रात्मा, पुण्यात्मा, 5. ईमानदार, खरा, सच्चा, निष्ठावान, तथा 6. श्वेत, उज्जवल और चमकदार। 'शौच' शब्द की व्युत्पत्ति 'शुचेर्भावः अण् शौचम्' से हुई है और 'शौच' शब्द के भी सामान्य शब्दकोशों में दिये गये अर्थ हैं - 1. शुद्धता, पवित्रता, स्वच्छता, सब प्रकार से पवित्र जीवन बिताना, 2. मल त्याग करना, प्रातः किया जाने वाला नित्यकर्म मलत्याग और दातुन-कुल्ला करना आदि, 3. स्वच्छ होना, निर्मल होना, तथा 4. खरापन और ईमानदारी। किन्तु जैन परम्परा में

Scanned by CamScanner

'शौच' शब्द का प्रयोग एक विशिष्ट अर्थ में होता है। जैनेन्द्र सिद्धान्त **कोश**, भाग 4, में 'लोभ प्रकाराणामुपरमः शौचम्', अर्थात् लोभ के प्रकारों का त्याग करना शौच बताया गया है।

लोभ या कहिये लालच अथवा कोई वस्तु पाने के लिये आकुल करने वाली इच्छा, कामना, लालसा या वासना अथवा तृष्णा क्या वला है? क्रोध, मान और माया के वाद इसका ही स्थान है जो व्यक्ति से अकरणीय कार्य कराकर उसका पतन करता है। इस सम्वन्ध में कहीं पढ़ी एक कहानी मानसपटल पर आ रही है। कहानी इस प्रकार है कि एक धर्मनिष्ठ संस्कारवान ब्राह्मण परिवार का एक नवयुवक गुरुकुल में शिक्षा पूर्णकर जव घर वापस आया तो उसकी सद्य विवाहिता वधू ने उससे पूछा, "आप अपनी शिक्षा पूर्ण कर आये और पंडित हो गये?" युवक दर्प के साथ बोला, "हां, मेरी शिक्षा पूर्ण हो गयी है और मैं पंडित हो गया हूँ। मुझे सब ज्ञान हो गया है।" पत्नी बोली, "ठीक है। आप यदि पंडित हैं, तो मेरे एक छोटे से प्रश्न का उत्तर दें तभी मैं आपसे आगे वात करूंगी।" पति बोला, "प्रश्न पूछो।" पत्नी ने पूछा, "पाप का वाप कौन है, बतायें।" पति असमंजस में पड़ गया। उसने अपनी सारी पढ़ाई में इस प्रश्न का उत्तर कहीं नहीं पढ़ा था। वह वगले झांकने लगा। फिर कुछ ठहरकर बोला, "मैं इस प्रश्न का उत्तर लाकर ही तुमसे वात करूंगा।" तदनन्तर वह घर से निकल गया और जहां-तहां लोगों से इस प्रश्न का उत्तर पूछने लगा, किन्तु किसी से कुछ पता नहीं चला। चलते-चलते कई दिन वीत गये, पास का धन समाप्त हो गया और वह निराहार रह भूख से क्लान्त और शिथिलगात हो गया। इस दशा में पैदल चलते हुए एक दिन वह एक अन्य नगर में किसी सुमुखी वारांगना की हवेली के नीचे जा पहुंचा। सुन्दरी की दृष्टि उस सुदर्शन किन्तु क्लान्त मुख नवयुवक पर जा पड़ी। उसे उसके विषय में जिज्ञासा हुई। वह अपनी हवेली से उतरकर आई और

Scanned by CamScanner

युवक से उसकी इस दशा और चिन्ता का कारण पूछा। युवक ने बताया कि वह इस प्रश्न का उत्तर ढूंढने चला है कि पाप का बाप कौन है और जब तक वह ज्ञात नहीं हो जाता उसके चित्त को चैन नहीं है। सुन्दरी समझदार थी। वह उसकी समस्या समझ गई और बोली, ''चिन्ता न करो, उसका उत्तर मिल जायेगा। किन्तु पहले यह तो बताओं कि तुमने कुछ खाया-पिया है या नहीं।'' नौजवान बोला, ''भोजन के लिये मेरे पास सब पैसे चुक गये हैं और कई दिन से भूख से व्याकुल हूँ।'' वारांगना बोली, ''कोई बात नहीं। तुम मेरी हवेली में मेरे साथ आओ, भोजन की व्यवस्था हो जायेगी।'' तिस पर युवक ने उससे पूछा, ''लेकिन तुम हो कौन? '' वह बोली ''मैं वेश्या हूँ।'' सुनते ही युवक बोल उठा, ''छिः छिः, मैं धर्मनिष्ठ ब्राह्मण हूँ, कैसे वेश्या के घर में प्रवेश कर सकता हूँ? धर्मभ्रष्ट हो जाऊँगा।'' वेश्या ने कहा, ''वेश्या हूँ तो क्या हुआ, हूँ तो इन्सान। तुम भूखे हो और भूख के मारे पीले पड़े जा रहे हो। यहां परदेस में हो। कोई तुम्हें यहां जानता नहीं है। भोजना करना तुम्हारे लिये जरूरी है और घर लौटने के लिए भी धन की आवश्यकता तुम्हें पड़ेगी। लो मैं तुम्हें सौ स्वर्ण मुद्रा देती हूँ। अन्दर चले आओ कोई देख नहीं रहा है।'' भूख से व्याकुल ब्राह्मण युवक सोच में पड़ गया। एक ओर वेश्या के घर में जाने से धर्मभ्रष्ट होने का भय मन में सता रहा था, दूसरी ओर पेट में अंतड़ियों की कुलबुलाहट सुनाई दे रही थी और तीसरी ओर सौ स्वर्णमुद्रा पाने का लालच मुँह बायें खड़ा था। हठात् लालच की विजय हुई और वह वेश्या के साथ उसकी हवेली के अन्दर चला गया। हवेली में उसे कोई नौकर-चाकर नहीं दिखाई दिया। वेश्या बोली, ''आज घर पर कोई नौकर नहीं है, वह होता तो उससे ब्राह्मण महाराज के लिये बाजार से भोजन की व्यवस्था करा देती। अब तो आपको मेरे हाथ का पकाया ही खाना पड़ेगा। भूख मिटाने का और कोई उपाय नहीं है।'' ब्राह्मण फिर धर्म संकट में पड़ गया, बोला, ''यह कैसे हो सकता है कि मैं ब्राह्मण

Scanned by CamScanner

होकर वेश्या के हाथ का पकाया खाना खाऊँ?" वेश्या फिर बोली, "सोच लो महाराज, मजबूरी है। अच्छा मैं पांच सौ स्वर्ण मुद्राएं दूं तब तो मान जाओगे।" ब्राह्मण फिर सोच में पड़ गया, लोभ ने फिर जोर मारा। सोचने लगा - पांच सौ स्वर्ण मुद्राएं मिल रही हैं, भोजन मिल रहा है, कोई देखने वाला भी नहीं है, अतः क्या बुराई हैं। बोला, "तथास्तु"। और वह वेश्या उसके लिये विविध पक्वान पका थाली भर भोजन लाई। उस भोजन थाल को देखकर ब्राह्मण देवता के मुँह से लार टपकने लगी। ज्यों ही उन्होंने थाली की ओर हाथ बढ़ाया कि वेश्या बोल उठी, "जरा ठहरिये महाराज। आज मेरे द्वार पर धर्मनिष्ठ ब्राह्मण देवता की चरण-रज पड़ी है। मेरी आन्तरिक इच्छा है कि मैं अपने हाथों से आपके मुँह में कौर खिलाकर अपने को धन्य करूं और इस हेतु मैं आपको एक सहस्र स्वर्ण मुद्रा की दक्षिणा देने को तैयार हूँ।"

लालच बुरी बला है। यह सुन लोभ के वशीभूत हो चुके ब्राह्मण देवता की बांछे खिल गई और उन्हें वेश्या के हाथ से भोजन करना भी असंगत नहीं लगा। 'तथास्तु' कह ज्यों ही उन्होंने अपना मुँह वेश्या के हाथ की ओर बढ़ाया उसने खींच कर तमाचा उनके चेहरे पर जड़ दिया और बोली तुम्हारे प्रश्न का उत्तर यही है कि **लोभ**, जिसके वशीभूत हो तुम अकरणीय कार्य करने को तैयार हो गये हो, **पाप का बाप है**। ब्राह्मण शर्मिन्दा हो गया, उसकी आँखें खुल गई। वेश्या से क्षमा मांग वह अपने घर लौट गया।

सोने के कंगन के लालच में एक बटोही को तालाब के किनारे बैठे एक बूढ़े शेर के हाथों कैसे अपने प्राण गंवाने पड़े, यह कहानी हमने बचपन में संस्कृत के नीतिग्रन्थ **'हितोपदेश'** में पढ़ी थी। सोने के मृग की कामना के वशीभूत हो लक्ष्मण को उसके पीछे दौड़ा देने के परिणाम स्वरूप ही पर्णकुटी में एकाकी सीता को रावण द्वारा अपहरण का शिकार होना पड़ा था, यह कहानी भी बचपन से सुनते आये हैं।

Scanned by CamScanner

अधिक व्याज पाने के लालच में ठग फाइनेन्स कम्पनियों के हाथों अपने गाढ़े पसीने की कमाई डुवाने वालों के किस्से आये दिन सुनने में आते हैं। अधिक धन पाने की लिप्सा में निंद्य वस्तुओं का व्यापार करने वालों और निंद्य व्यवसाय करने वालों का यहां अभाव नहीं है। कालाबाजारी, चोरी का माल खरीदना, खाद्य पदार्थों और जीवनदायी औषधियों आदि वस्तुओं में मिलावट करना, घटतौली करना आदि कुप्रवृत्तियां व्यापार में अधिक धन पाने की लालसा के कारण ही पल्लवित-पुष्पित होती हैं। चोरी, लूट, डाका, किसी का अपहरण कर फिरौती मांगना, किसी से भाण्डाफोड़ न करने की कीमत पर धन वसूली तथा राजनेताओं और सरकारी कार्यालयों में रिश्वतखोरी भी अधिक धन पाने की लालसा की देन हैं। लालच के वशीभूत हो इस प्रकार निंद्य कार्य करने वाले व्यक्ति प्रायः असत्य और मायाचारिता का सहारा लेते देखे जाते हैं। जब किसी का भाण्डा फूट जाता है और वह पकड़ा जाता है तब उसकी कैसी दुर्गति होती है, किसी से छिपी नहीं है। अतः लोभ-लालच किसी प्रकार भी उचित नहीं है।

वासना के वशीभूत हो पर-स्त्री और पर-पुरूष के साथ अवैध सम्बन्ध स्थापित करना भी लोभ की कोटि में ही आता है। सामाजिक मर्यादाओं के उल्लंघन के साथ-साथ ये अवैध सम्बन्ध सम्बन्धित स्त्री-पुरूष के घर-परिवार की शान्ति को चौपट करने वाले होने के साथ ही उन्हें अवैध सम्बन्ध बनाये रखने हेतु अनेक निंद्य और अकरणीय कार्य करने में प्रवृत्त करते हैं और उनकी मान-मर्यादा को नष्ट करते हैं। अतः गर्हित हैं।

अतः जिनेन्द्र देव ने सुख के मार्ग के सहायक सब प्रकार के लोभ का वर्जन करने वाले शौचधर्म का उपदेश दिया है। यह शौचधर्म आत्म गुणों के निरन्तर मनन, मन में आने वाले शल्यों (कांटे की तरह चुभने वाले विचारों) को त्यागने और मन में निर्मल भावों को धारण करने से

Scanned by CamScanner

होता है।

'जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश' में समभाव और सन्तोष रूपी जल से तृष्णा और लोभ रूपी मल को धोने एवं भोजन की गृद्धि नहीं करने को निर्मल शौचधर्म तथा परस्त्री, परपुरुष और परधन की अभिलाषा न करते हुए षट्काय जीवों की हिंसा से विरत रहने को उत्तम शौचधर्म बताया है।

यह भी एक सत्य है कि मानव की इच्छाओं, कामनाओं और तृष्णा का कहीं कोई अन्त नहीं है, भले ही वे कितनी भी अशान्तिदायक हों, चिन्ताग्रस्त करने वाली हों। कोई व्यक्ति अन्त समय तक भी तृष्णा से पूर्णरूपेण विरत हो पाता है, कहना कठिन है। कहा भी है, 'तृष्णा न जीर्णा वयं जीर्णाः' और कवि भूधरदास के शब्दों में 'अंग उपंग पुराने परे, तिषना उर और नवीन भई है'। यह भी सत्य है कि सन्तोष प्रगति में बाधक है और संसार में जो कुछ भौतिक विकास या लौकिक प्रगति दृष्टिगत होती है वह मानव का अपनी इच्छाओं को पूरी करने के प्रयास का ही परिणाम है। तदपि 'सन्तोषं परमं सुखम्' और 'जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूरि समान' कहावतों का जीवन में अपना महत्व है। एक सद्नागरिक होने के लिये और अपना तथा औरों का भला चाहने के लिये यह आवश्यक है कि हम किसी भी प्रकार के लोभ-लालच से बचें और अपनी कामनाओं, इच्छाओं, वासना और तृष्णा को नियन्त्रित कर शौचधर्म का पालन करें। लोभ से सर्वथा विरत रहने वाला व्यक्ति निर्दोष, निष्कपट, निष्पाप, निष्कलंक, सद्गुणी, पवित्रात्मा, ईमानदार, खरा और सच्चा इन्सान होगा और 'शुचि' एवं 'शौच' शब्दों के शब्दकोशगत सामान्य अर्थों को भी सार्थक करेगा तथा जीवन में नैतिक मूल्यों को भी स्थापित करेगा।

संयमधर्म : 'संयम' शब्द 'सम्' और 'यम' इन दो शब्दों को मिलाकर बना है। 'सम्' का अर्थ 'पूर्ण रूप से' तथा 'यम्' का अर्थ 'रोकथाम'

Scanned by CamScanner

है। इस प्रकार 'संयम' शब्द का अर्थ 'पूर्ण रूप से रोकथाम' है। इसका अभिप्राय है विषय वासनाओं में रत अपनी इन्द्रियों तथा मन की प्रवृत्तियों को भली प्रकार से वश में कर लेना और उन पर विजय प्राप्त कर लेना। इसे ही उत्तम संयम कहा गया है।

'संयम करो' कहना जितना सरल है, संसारी गृहस्थ जनों द्वारा उसका पालन करना उतना ही कठिन है। अपनी पांचों इन्द्रियों, अर्थात् रसना (जीभ), घ्राण (नाक), चक्षु (आँख), श्रोतृ (कान) और स्पर्शन (त्वचा) को पूर्णतः वश में रखना हर किसी के बूते की बात नहीं है। मन की चंचलता तो सर्वविदित है ही। यह भी सत्य है कि इन इन्द्रियों और मन को स्वच्छन्द छोड़ देने या, यूं कहिये, इनके वशीभूत हो जाने पर प्राणी को जीवन में अनेक बार संकटों का सामना करना पड़ता है। मन मुताबिक चलने वाला 'मर्कट' (बन्दर) माना जाता है और मन को अपने मुताबिक चलाने वाला 'मुनि'। अतः इन्द्रियों और मन पर नियन्त्रण आत्महित में अभीष्ट है।

इन्द्रियों और मन के निग्रह का उपाय 'दशलक्षण पूजा' में रस-त्याग और उपवास बताया है। कषायों के निग्रह, त्रस और स्थावर जीवों की रक्षा करने तथा मन में अनुकम्पा और परमार्थ की भावना बार-बार करने से संयम होने की बात बताई गई है। संयम को सम्यक्दर्शन के मार्ग को पुष्ट करने वाला तथा मोक्ष का मार्ग बताया गया है।

तपधर्म : 'तप' का अर्थ है 'तपाना'। यहाँ तपाने से आशय अपनी आत्मा को तपाकर शुद्ध करने से है। जिस प्रकार अग्नि में तपा कर स्वर्ण आदि धातुएं शुद्ध की जाती हैं, उसी प्रकार मन और पांचों इन्द्रियों का दमन कर, सब प्रकार का परिग्रह त्याग कर और रागादि भावों को जीतकर आत्मा को शुद्ध किया जाता है। ऐसे तपस्वी साधु महात्मा सबके श्रद्धास्पद होते हैं। वे सब प्रकार के परिषहों और उपसर्गों को निर्विकार

Scanned by CamScanner

भाव से सहन कर लेते हैं। भिक्षापूर्वक आहार लेते हैं। समितियों और गुप्तियों का सम्यक् पालन करते हैं। प्रायः वन में रहते हुए आत्म-स्वरूप का चिन्तन-मनन करते हैं। जहाँ तक गृहस्थों का सम्बन्ध है, तप का आशय व्रत-उपवास, रस-परित्याग, सामायिक, ध्यान आदि द्वारा इच्छाओं के निरोध का अभ्यास करना हैं।

त्यागधर्म : संस्कृत की 'तज्' धातु से त्याग शब्द की व्युत्पत्ति हुई है और इसका अर्थ है 'त्यागना या छोड़ना'। स्व आत्मा से वाह्य अन्य सब पदार्थो से ममत्व छोड़ने को त्याग बताया गया है। व्यवहार में गृहस्थों के प्रसंग में इसका आशय अपनी सामर्थ्यानुसार दान देने से है। मोटे तौर पर दान चार प्रकार का है - आहारदान, औषधिदान, शास्त्रदान और अभयदान। साधु-सन्तों और जरूरतमन्द भूखे व्यक्तियों को भोजन कराना आहारदान है। बीमार असहाय व्यक्तियों के उपचार हेतु चिकित्सा व्यवस्था करना औषधिदान है। रुग्ण साधु-सन्तों की वैयावृत्ति भी इसके अन्तर्गत आती है। संसाधन-विहीन ज्ञान के अभिलाषियों के लिये अध्ययन हेतु आवश्यक पुस्तकों आदि की व्यवस्था और सहायता प्रदान करना शास्त्रदान कहलाता है। जो व्यक्ति पर-पीड़न, अत्याचार और अन्याय के शिकार हैं उनकी रक्षा कर उनमें सुरक्षा की भावना उत्पन्न करना अभयदान है। इन चारों दानों में आहारदान का स्थान सर्वोपरि है क्योंकि आहार लेने वाला और आहार देने वाला दोनों को एक साथ सन्तुष्टि की अनुभूति हो जाती है कि 'मैंने भरपेट भोजन किया, मैं तृप्त हुआ' और यह कि 'मैंने भरपेट भोजन कराया'। ऐसा इसलिये है कि किसी भी व्यक्ति की एक समय में भोजन करने की अपनी एक सीमा होती है। कोई भी व्यक्ति अपने पेट से अधिक भोजन नहीं कर सकता और इस मंहगाई के युग में भी दाता किसी को एक समय तो भरपेट भोजन सहज ही करा सकता है। अन्य दानों के सम्बन्ध में यह आवश्यक नहीं है कि पाने वाला व्यक्ति

Scanned by CamScanner

पूर्णतया तृप्त या सन्तुष्ट हो सके और दाता भी अपने संसाधनों या अन्य कारणों से पात्र की सम्पूर्ण आवश्यकता पूर्ण करने की सन्तुष्टि पा सके। लेकिन किसी को दान देना तभी सार्थक हैं जब दाता बिना नाम-मोह के दान दे। अपना नाम करने के लिये दान देना अथवा किसी प्रत्याशा में दान देना, दान नहीं है अपितु वह सौदेबाजी है।

उपर्युक्त चार प्रकार के दानों के अतिरिक्त अन्य लोकोपकारी कार्यों में निस्स्वार्थ भाव से यथाशक्ति योगदान करना भी त्याग की श्रेणी में आता है जो गृहस्थों के लिये श्रेयस्कर है।

किसी भी कुव्यसन को तजना या छोड़ना अच्छी बात मानी जाती है, क्योंकि वह व्यक्ति के हित में होती है। किन्तु अच्छी समझकर या आवश्यकता के कारण संग्रहणीय वस्तु और अच्छी मानकर अपनायी जाने वाली बात को भी त्यागने के उदाहरण देखने में आते रहते हैं। अपनी आवश्यकता से अधिक होने और दूसरों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अपनी धन-सम्पत्ति का त्याग उपर्युक्त प्रकार के चार दानों और लोकोपकारी कार्यों में करने वाले व्यक्ति अनेक हुए हैं और अनेक हैं। घर गृहस्थी और सांसारिक सुखों से किसी न किसी कारण विरक्त होकर उन्हें तजने वाले भी होते आये हैं। 'त्याग' मनुष्य को सम्मान प्रदान करने वाला और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाने वाला है। आत्मसम्मान और आत्म-प्रतिष्ठा किसको अच्छी नहीं लगती? ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जो प्रतिष्ठा पाने के लोभ में अपने द्वारा किये गये यत्किंचित् त्याग या दान का जोर-शोर से विज्ञापन और प्रचार करते-कराते हैं। **किन्तु वास्तविक त्याग वह है जो किसी प्रकार के प्रचार की अपेक्षा नहीं रखता। वह सद्भावना से पूरित होता है और दूसरों की सेवा-सहायता हेतु अपने कष्ट की परवाह किये बिना अपनी अत्युत्तम और संग्रहणीय वस्तु को भी दांव पर लगाने को प्रेरित कर देता है। अवश्य ही ऐसे त्यागीजन विरले ही होते हैं, किन्तु उनका**

Scanned by CamScanner

जीवन उस दीपशिखा के समान होता है जो स्वयं जलते रह कर दूसरों का पथ आलोकित करते हैं। विद्यावारिधि स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के शब्दों में "त्याग वह अंतरंग निर्लोभता एवं सन्तोषभाव है जो व्यक्ति की ऐहिक-दैहिक इच्छाओं एवं आवश्यकताओं को परिमित करके सहज प्राप्त सीमित साधनों के मितव्ययतापूर्वक उपयोग द्वारा सुख से निर्वाह करने की क्षमता प्रदान करता है। दूसरों की सेवा-सहायता भी बिना स्वार्थ-त्याग के नहीं हो पाती।"

आकिंचन्यधर्म : 'किंचिदपि न' अर्थात् आकिंचन का अर्थ है 'कुछ भी नहीं लेना'। गृहस्थ निरीह होकर किसी से कुछ न ले, किसी पदार्थ की आशा न रखे, सब प्रकार के परिग्रह से निर्लिप्त हो जल में रहते हुए भी कमलवत रहे, इसी को आकिंचन्यधर्म कहा गया है। व्यवहार रूप में परिग्रह का त्याग करने और परिग्रह के अभाव अर्थात् अपरिग्रह को अपनाने को आकिंचन्य-धर्म बताया गया है। यह 'परिग्रह' क्या है? 'परितः गृह्यते यत् तत् परिग्रहम् इति उच्यते' अर्थात् अपने चारों ओर से ग्रहण की गई वस्तु को परिग्रह कहते हैं और यह कि अपनी आवश्यकता अथवा सुख-सुविधा हेतु ग्रहण की गई उस वस्तु पर हम अपना स्वत्व और ममत्व समझते हैं। उसका उपभोग कर हम आनन्दित होते हैं और उसकी रक्षा की चिन्ता हमें जब-तब सताती रहती है।

जिस व्यक्ति के पास जितना अधिक परिग्रह होता है वह प्रायः उतना ही आकुल दिखाई पड़ता है। किन्तु इस आकुलता से बचने के लिये पूर्ण या सर्वथा अपरिग्रही कितने मानव हैं? अपरिग्रह महाव्रतधारी दिगम्बर जैन मुनिराज को भी अपनी चर्या के लिए कम से कम एक कमण्डल और एक पिच्छि अपने पास रखने की आवश्यकता पड़ती है। ये दोनों या इनमें से एक छिन जाये और इनकी आपूर्ति की वैकल्पिक व्यवस्था भी बनती न दिखती हो, तो क्या वे परम शान्त-सरल परिणामी

Scanned by CamScanner

महाराज, भले ही किसी से कुछ न कहें, अपने अन्तस् में अपने उन मात्र दो परिग्रहों के अभाव में सर्वथा निराकुल रह सकेंगे?

सामान्य गृहस्थजन, जिन पर अपने जीवन-निर्वाह के साथ-साथ अपने परिवार आदि के भरण-पोषण का भार होता है, उन्हें तो वैभवपूर्ण सुख-सुविधाओं की बात छोड़ भी दें, अपने दायित्वों के निर्वाह के लिये ही अनेक प्रकार के उपकरणों, साज-सज्जा, धन-सम्पत्ति को जुटाना आवश्यक होता है और उनकी रक्षा की चिन्ता उनके मन को व्यथित किये रहती है। **किन्तु यह भी एक व्यावहारिक सत्य है कि जिसके पास अपनी आवश्यकता की पूर्ति के उपरान्त, तृष्णा की बात छोड़ दें, जितना कम परिग्रह होता है वह उतना ही निराकुल और सुखी होता है।** वैसे भी धन-सम्पत्ति तथा आवश्यक जीवनोपयोगी सामग्री आदि का यथासंभव समान वितरण समाज में सद्भावपूर्ण सह-अस्तित्व के लिये अभीष्ट है। यदि हम अपनी आवश्यकता से अधिक सामान आदि अपने पास रखने की प्रवृत्ति में किंचित् संशोधन कर लें, तो कदाचित् इस दिशा में अग्रसर हो सकें। अस्तु, अपनी आकुलता कम करने के लिये, परिग्रह परिमाण की दिशा में अग्रसर होने के लिए आकिंचन्य-धर्म को अपनाना श्रेयस्कर है।

ब्रह्मचर्यधर्म : 'ब्रह्म' का अर्थ है 'आत्मा'। आत्मा में चर्या या आचरण करने को ब्रह्मचर्य कहते हैं। सर्व पदार्थों से मन को हटाकर आत्मा में ही उपयोग लगाना ब्रह्मचर्य है। किन्तु इस कार्य में सबसे अधिक बाधक प्रवृत्ति इन्द्रिय-लोलुपता और कुशील-सेवन है। अतएव मनसा-वाचा-कर्मणा अपने वीर्य की रक्षा करते हुए और शील को अक्षुण्ण रखते हुए आत्मा में लीन होने को उत्तम ब्रह्मचर्य-धर्म कहा गया है।

ब्रह्मचर्य-धर्म का यह स्वरूप ब्रह्मचर्य महाव्रतधारी साधु-सन्तों के लिये है। सामान्य गृहस्थ जनों के प्रसंग में ब्रह्मचर्य का आशय

Scanned by CamScanner

सदाचरण से है। अपनी विधिपूर्वक विवाहिता पत्नी/पति से ही शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करना सदाचरण कहलाता है और इसके विपरीत वासना के वशीभूत हो परस्त्री/परपुरुष से अवैध शारीरिक सम्बन्ध बनाना दुराचरण माना जाता है। इस प्रकार के अवैध सम्बन्ध सामाजिक मर्यादाओं का तो उल्लंघन करते ही हैं सम्बन्धित स्त्री-पुरुष के अपने परिवार की सुख-शान्ति को भी चौपट करते हैं तथा उन्हें अवैध सम्बन्ध बनाये रखने हेतु अनेक निंद्य और अकरणीय पापकर्मों में लिप्त कर कानून की दृष्टि में भी अपराधी बना देते हैं और उनकी मान-मर्यादा नष्ट कर देते हैं तथा उन्हें चरित्रहीन बना देते हैं। कहावत है, 'जिसने धन खोया कुछ नहीं खोया, जिसने स्वास्थ्य खोया कुछ खोया, किन्तु जिसने चरित्र खो दिया उसने सब कुछ खो दिया'। अस्तु गृहस्थों को चरित्रवान बने रहने के लिये स्व-दारा और स्व-पति से सन्तोष कर शीलव्रत रूपी ब्रह्मचर्य-धर्म का पालन करना अभीष्ट है।

4.9.2008 ई.

ज्योति निकुंज, चारबाग
लख़नऊ-226 004

Scanned by CamScanner

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

Scanned by CamScanner